दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

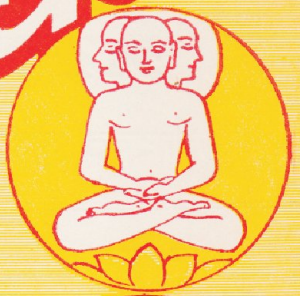

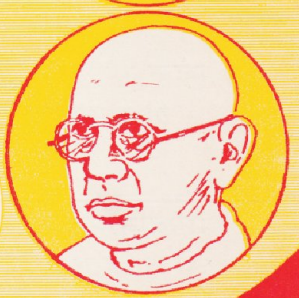

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

ज्ञान दीप तप तेल भर,
घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं,
पैठे पूरब चोर॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आत्मधर्म [३७६]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स
जयपुर

क्या

१ संत निरंतर चिंतत ऐसै
२ आत्मार्थी बंधुओं से...
३ संपादकीय : उत्तम क्षमा
४ दीपावली
५ ज्ञान और वैराग्य
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ समयसार प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ महापर्व दशलक्षण समाचार
१० पाठकों के पत्र
११ प्रबंध संपादक की कलम से

भगवान महावीर को निर्वाण एवम् उनके ही प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम को सर्वज्ञता प्राप्ति के सोल्लास के प्रतीक परम मंगलमय दीपावली के पावन अवसर पर आत्मधर्म परिवार की आध्यात्मिक प्रगति के लिये मांगलिक कामनाएँ स्वीकार कीजियेगा। - ***संपादक***

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३७६] अंक : ४

संत निरंतर चिंतत ऐसै,
आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥संत० ॥
वरणादिक विकार पुद्गल के,
इनमें नहिं चैतन्य निशानी।
यद्यपि एकक्षेत्र अवगाही,
तदपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥संत० ॥
रागादिक तो देहाश्रित हैं,
इनतें होत न मेरी हानी।
दहन दहत ज्यों गगन न तद्गत,
गगन दहनता की विधि हानी ॥संत० ॥
मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस,
लवणखिल्लवत लीला ठानी।
मिलो निराकुल स्वाद न यावत,
तावत पर-परनति हित मानी ॥संत० ॥
'भागचंद्र' निरद्वंद निरामय,
मुरति निश्चय सिद्ध समानी।
नित अकलंक अवंक शंक बिन,
निर्मल पंक बिना जिमि पानी ॥संत० ॥

आत्मार्थी बंधुओं से.....

आत्मसाधना में जगत के विविध प्रतिकूल-अनुकूल संयोग तो बीच में आते ही हैं, यह कोई आश्चर्य नहीं है। किंतु ऐसे समय पर अपनी आत्मार्थिता के बल से, अपनी सर्वशक्ति को उपयोग में लेकर अपनी आत्मसाधना में अडिग रहना, अखंडरूप से उसे बनाये रखकर उसमें दृढ़ता से आगे बढ़ना। आ...त्मा...र्थि....ता - यही एक ऐसा महान् बल है कि जिसके समक्ष जगत् का कोई बल नहीं चल सकता। जगत् का कोई बल आत्मार्थी को उसके मार्ग से च्युत नहीं कर सकता। सचमुच आत्मार्थी को जगत् में कोई विघ्न है ही नहीं।

तथापि, हे जीव! तुझे उलझन हो तो पूर्वकालीन महापुरुषों के जीवन को याद कर। उन साधक संतों ने कैसे-कैसे प्रसंगों में भी अपनी आराधना बनाये रखी है। उनका स्मरण करके, उनके उदाहरण से अपने आत्मा को भी आराधना में उत्साहित कर।

आत्मार्थी के परिणाम उल्लसित होते हैं, क्योंकि आत्मस्वभाव को साधकर उसे अल्पकाल में संसार से मुक्त होकर सिद्ध होना है। इसलिये उसे निरंतर अपनी मुक्ति का उल्लास होता है और इसी कारण वह उल्लसित वीर्यवान होता है। पूर्वकाल में जिसे कभी नहीं साध पाया, ऐसे अपने सम्यग्दर्शनादि कार्य को साधने के लिये आत्मार्थी का हृदय निरंतर उत्साहित होता है।

पूज्य कानजीस्वामी

सम्पादकीय

उत्तम क्षमा | एक अनुशीलन

[सितम्बर अंक से आगे]

क्षमा के साथ लगा उत्तम शब्द सम्यग्दर्शन की सत्ता का सूचक है। सम्यग्दर्शन के साथ होनेवाली क्षमा ही उत्तमक्षमा है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है – जबकि क्षमा का संबंध क्रोध के अभाव से है तो फिर उसका सम्यग्दर्शन से क्या संबंध? यह शर्त क्यों – कि उत्तमक्षमा सम्यग्दृष्टि को ही होती है, मिथ्यादृष्टि को नहीं? जिसको क्रोध नहीं हुआ, उसके उत्तमक्षमा हो गयी, चाहे वह मिथ्यादृष्टि हो या सम्यग्दृष्टि। मिथ्यादृष्टि के उत्तमक्षमा हो ही नहीं सकती, यह अनिवार्य शर्त क्यों?

भाई! बात ऐसी है कि क्रोध का अभाव आत्मा के आश्रय से होता है। मिथ्यादृष्टि के आत्मा का आश्रय नहीं है, अतः उसके क्रोध का अभाव नहीं हो सकता। इसलिये मिथ्यादृष्टि के क्रोध नहीं हुआ, यह बनता ही नहीं है। उसे जो 'क्रोध नहीं हुआ' ऐसा देखने में आता है, वह तो क्रोध का प्रदर्शन नहीं हुआ वाली बात है। क्योंकि कभी-कभी जब क्रोध मंद होता है तो क्रोध का प्रदर्शन नहीं देखा जाता है, उसे ही अज्ञानी क्रोध का अभाव समझ लेते हैं और उत्तमक्षमा कहने लगते हैं। वस्तुतः वह उत्तमक्षमा नहीं, उत्तमक्षमा का भ्रम है।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि मिथ्यादृष्टि के क्रोध का अभाव क्यों नहीं हो सकता? उसके सदा अनंत क्रोध क्यों रहता है? इसका उत्तर यह है कि पर में कर्तृत्वबुद्धि से ही अनंतानुबंधी क्रोध उत्पन्न होता है। जब कोई परपदार्थ उसकी इच्छा के अनुकूल परिणमित नहीं होता है, तो वह उस पर क्रोधित हो उठता है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोक में जो-जो परपदार्थ उसकी इच्छा के अनुकूल परिणमित न होंगे, वे सब उसके क्रोध के पात्र होंगे। परपदार्थ हैं अनंत, अतः अभिप्राय में अनंत परपदार्थ उसके क्रोध के पात्र हुए; यही है अनंतानुबंधी क्रोध, क्योंकि उसने अनंत परपदार्थों से अनुबंध किया।

इसप्रकार हम देखते हैं कि मिथ्यादृष्टि के परपदार्थों में कर्तृत्वबुद्धि रहती है। इस कारण उसके क्रोधादि मंद भले ही हो जायें, किंतु उसके अनंतानुबंधी कषाय का भी अभाव नहीं होता है तो उसके उत्तमक्षमादि धर्म कैसे प्रगट हों ?

दूसरी बात यह भी तो है कि उत्तमक्षमादि दशधर्म सम्यक्चारित्र के ही रूप हैं और सम्यक्चारित्र, सम्यग्दर्शन के बिना होता नहीं, इसलिये यह स्वत: सिद्ध है कि मिथ्यादृष्टि के उत्तमक्षमादि धर्म प्रगट नहीं हो सकते।

निश्चय से तो क्षमास्वभावी आत्मा के आश्रय से पर्याय में क्रोधरूप विकार की उत्पत्ति नहीं होना ही उत्तमक्षमाहै; पर व्यवहार से क्रोधादि के निमित्त मिलने पर भी उत्तेजित नहीं होना, उनके प्रतिकाररूप प्रवृत्ति नहीं होने को भी उत्तमक्षमा कहा जाता है। दशलक्षण पूजन में उत्तमक्षमा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है –

'गाली सुन मन खेद न आनौ, गुन को औगुन कहै बखानौ।
कहि है बखानौ वस्तु छीने, बाँध-मार बहुविधि करै।
घरतैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै॥'

उक्त छंद में निमित्तों की प्रतिकूलता में भी जो शांत रह सके, वही उत्तमक्षमा का धारी है; ऐसा कहा गया है। गाली सुनकर भी जिसके हृदय में खेद उत्पन्न न हो, वह उत्तमक्षमावान है।

बहुत से लोग ऐसा कहते पाये जाते हैं कि वैसे तो मेरा स्वभाव एकदम शांत है, पर कोई छेड़ दे तो फिर मुझसे नहीं रहा जाता। उनसे मेरा कहना है कि ऐसा कोई व्यक्ति बताइए कि जिसकी हम प्रशंसा करें और उसे क्रोध आवे। प्रशंसा सुनकर तो लोगों को मान आता है, क्रोध नहीं। क्षमा का धारी तो वह है, जिसे गालियाँ सुनकर भी क्रोध न आवे।

यहाँ तो और भी ऊँची बात की है। क्रोध की उग्रता तो दूर, मन में भी खेद तक उत्पन्न न हो, तब क्षमा है। किन्हीं बाह्य कारणों से क्रोध व्यक्त न भी करे, पर मन में खेद-खिन्न हो जावे तो भी क्षमा कहाँ रही ? जैसे – मालिक ने मुनीम को डाँटा-फटकारा, तो नौकरी छूट जाने के भय से मुनीम में क्रोध के लक्षण तो प्रगट नहीं हुए, पर खेद-खिन्न हो गया तो वो क्षमा नहीं कहला सकती। इसीलिए कवि ने लिखा है:-

'गाली सुन मन खेद न आनौ।'

जो 'गाली सुनकर चांटा मारे,' वह तो काया की विकृतिवाला है। 'गाली सुनकर गाली देवे' वह वचन की विकृतिवाला है। 'गाली सुनकर खेद मन में लावे' वह मन की विकृतिवाला है। परंतु 'गाली सुन मन खेद न आवे', वह क्षमाधारी है।

इसके भी आगे कहते हैं कि 'गुन कौ औगुन कहै बखानौ।' हों हम में गुण, और सामनेवाला औगुणरूप से वर्णन करे, वह भी अकेले में नहीं भरी सभा में, व्याख्या में; फिर भी हम उत्तेजित न हों तो क्षमाधारी हैं।

कुछ लोग कहते हैं भाई! हम गालियाँ बर्दाश्त कर सकते हैं, पर यह कैसे संभव है कि जो दुर्गुण हममें हैं ही नहीं, उन्हें कहता फिरे। उन्हें भी अकेले में कहे तो किसी तरह सह भी लें, पर भरी सभा में, व्याख्यान में कहे तो फिर तो गुस्सा आ ही जाता है।

कवि इसी बात को तो स्पष्ट कर रहा है कि गुस्सा आ जाता है, तो वह क्षमा नहीं; क्रोध ही है। मान लो तब भी क्रोध न आवे, हम सोच लें बकनेवाले बकते हैं तो बकने दो, हमें क्या? पर जब वह हमारी वस्तु छीनने लगे तब? वस्तु छीनने पर भी क्रोध न करें, पर वह हमें बाँध दे, मारे और भी अनेक प्रकार पीड़ा दे तब? इसी के उत्तर में कवि ने कहा है :-

'वस्तु छीने, बाँध मार बहुविधि करै।'

'बहुविधि करै' शब्द में बहुत भाव भरा है। आप में जितनी सामर्थ्य हो, इसका अर्थ निकालिए। आज पीड़ा देने के अनेक नए-नए उपाय निकाल लिए गये हैं। विदेशी जासूसों के पकड़े जाने पर उनसे शत्रुओं के गुप्त भेद उगलवाने के लिये अनेक प्रकार की अमानुषिक पीड़ाएँ दी जाती हैं, जिनकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं; 'बहुविधि करै' में वे सब आ जाती हैं। पीड़ा देने के जितने प्रकार आप कल्पना कर सकें, करिए; वे सब 'बहुविधि करै' में आ जावेंगे। फिर भी क्रोध न करें, तब उत्तमक्षमा होगी, ऐसा कवि कहना चाहता है। बात यहीं पर समाप्त नहीं हुई, आगे भी बढ़ती है :-

'धरतैं निकारै तन विदारै, बैर जो न तहाँ धरै।'

कोई दुष्ट अनेक प्रकार पीड़ाएँ दे, देकर चला जाए, पर बाद में हम घर में रहकर उपचार

और आराम तो कर सकते हैं; पर जब वह हमें घर से ही निकाल दें, तब क्या करें ? घर से भी निकाल दे, पर शरीर स्वस्थ है तो कहीं न कहीं कुछ न कुछ करके जीवन चला ही लेंगे। पर जब वह घर से भी निकाल दे और शरीर का भी विदारण कर दे, तब तो क्रोध आ ही जावेगा।

नहीं भाई ! तब भी क्रोध न आवे तो उत्तमक्षमा है। तब भी कहाँ ? मान लो क्रोध नहीं किया, पर मन में गाँठ बाँध ली, बैर धारण कर लिया तो भी उत्तमक्षमा नहीं है।

क्रोध और बैर के बारे में पहले स्पष्टीकरण किया जा चुका है। क्रोध किया जाता है और बैर धारण किया जाता है अर्थात् क्रोध में तत्काल प्रतिक्रिया होती है और बैर में मन में गाँठ बाँध ली जाती है।

बैर आग है और आग जहाँ रखी जायेगी, पहिले उसे जलायेगी, बाद में दूसरे को जलाये चाहे न जलाये। अत: बैर भी – जो धारण करता है, उसे ही जलाता है; जिसके प्रति बैर धारण किया है, उसे चाहे जला पाये अथवा नहीं भी; क्योंकि उसका भला-बुरा तो उसके पुण्य-पाप के उदय के आधीन है।

अत: यहाँ क्रोध के अभाव के साथ-साथ बैर के अभाव को उत्तमक्षमा कहा है।

पर ये सब बातें व्यवहार की हैं। निश्चय से तो बाह्य निमित्तों की प्रतिकूलताओं पर भी क्रोध की प्रवृत्ति दिखायी नहीं देना मात्र उत्तमक्षमा नहीं है। हो सकता है कि बाह्य में क्रोधादि की प्रवृत्ति न भी दिखायी दे और अंतर में उत्तमक्षमा का विरोधी क्रोधभाव विद्यमान हो – तथा अंतर में आंशिक उत्तमक्षमा विद्यमान रहे, फिर भी बाह्य में क्रोधादि में प्रवृत्ति दिखायी दे।

अत: निश्चय उत्तमक्षमा समझने के लिये कुछ गहराई में जाना होगा।

शास्त्रों में क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। (१) अनंतानुबंधी (२) अप्रत्याख्यान (३) प्रत्याख्यान और (४) संज्वलन। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि के अनंतानुबंधी क्रोध का अभाव हो गया है, अत: उसे तत्संबंधी उत्तम क्षमाभाव प्रगट हो गया है। पंचम गुणस्थानवर्ती अणुव्रती के अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यान संबंधी क्रोध के अभावजन्य उत्तमक्षमा विद्यमान है तथा छठवें-सातवें गुणस्थानवर्ती महाव्रती मुनिराजों के अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान संबंधी क्रोध का अभाव होने से वे तीनों के अभाव संबंधी

उत्तमक्षमा के धारक हैं। नौवें-दसवें गुणस्थान से ऊपरवाले तो पूर्ण उत्तमक्षमा के धारक हैं।

उक्त कथन शास्त्रीय भाषा में हुआ, अतः शास्त्रों के अभ्यासी ही समझ पायेंगे। इस सब का तात्पर्य यह है कि उत्तमक्षमा आदि का नाप बाहर से नहीं किया जा सकता है। कषायों की मंदता और तीव्रता पर उत्तमक्षमा आधारित नहीं है, उसका आधार तो उक्त कषायों का क्रमशः अभाव है। कषायों की मंदता-तीव्रता के आधार पर जो भेद पड़ता है, वह तो लेश्या कहा जाता है।

यद्यपि व्यवहार से मंदकषायवाले को भी उत्तमक्षमादि का धारण करनेवाला कहा जाता है, पर अन्तर की दृष्टि से विचार करने पर ऐसा भी हो सकता है कि वह बाहर से तो बिल्कुल शांत दिखाई दे किंतु अंतर में अनंत क्रोधी हो अर्थात् अनंतानुबंधी का क्रोधी हो। नवमें ग्रैवेयक तक पहुँचनेवाले मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि बाहर से इतने शांत दिखायी देते हैं कि उनकी खाल खींचकर नमक छिड़कें, तब भी उनकी आँख की कोर लाल न हो, फिर भी शास्त्रकारों ने कहा है कि वे उत्तमक्षमा के धारक नहीं हैं, अनंतानुबंधी के क्रोधी हैं, क्योंकि उनके अंतर से आत्मा को अरुचिरूपी क्रोध का अभाव नहीं हुआ है। बाह्य में जो क्रोध का अभाव दिखायी देता है, उसका कारण आत्मा के आश्रय से उत्पन्न शांति नहीं है, वरन् जिस चिंतन के आधार पर वे शांत रहे हैं, वह पराश्रित ही रहता है। जैसे - वे सोचते हैं कि यदि मैं साधु हुआ हूँ तो मुझे शांत रहना ही चाहिये। यदि शांत नहीं रहूँगा तो लोग क्या कहेंगे? इस भव में मेरी बदनामी होगी और पाप का बंध होगा तो अगला भव भी बिगड़ जायेगा। यदि शांत रहूँगा तो अभी प्रशंसा होगी और पुण्यबंध होगा तो आगे भी सुख की प्राप्ति होगी।

इसीप्रकार का कोई न कोई यशादि का लोभ व अपयश आदि का भय अथवा पुण्य की रुचि और पाप की अरुचि ही उनकी शांति का आधार रहती है या फिर शास्त्रों में लिखा है कि मुनिराज को क्रोध नहीं करना चाहिये, शान्त रहना चाहिये - आदि किसी न किसी बाह्य आधार को पकड़कर ही शान्त रहते हैं, उनकी शांति का आधार आत्मा नहीं बनता है।

तथा कोई ज्ञानी चारित्रमोह के दोष से बाहर में क्रोध करता भी दिखायी दे, फिर भी उत्तमक्षमा का धारक हो सकता है। जैसे - आचार्यमहाराज मुनिराज को डांटते भी दिखाई दें, उन्हें दण्ड भी दे रहे हों, उत्तेजित भी दिखायी दे रहे हों; फिर भी वे उत्तमक्षमा के धारक हैं -

क्योंकि उनके अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध का अभाव है, आत्मा का आश्रय विद्यमान है। अणुव्रती या अविरतसम्यग्दृष्टि गृहस्थ तो और भी अधिक बाह्य में क्रोध करता दिखायी दे सकता है। अव्रती परंतु क्षायिक सम्यग्दृष्टि भरत चक्रवर्ती बाहुबली पर चक्र चलाते समय भी अनंतानुबंधी के क्रोधी नहीं थे।

अत: उत्तम क्षमा का निर्णय बाह्य प्रवृत्ति के आधार पर नहीं किया जा सकता।

अनंतानुबंधी क्रोध के अभाव से उत्तमक्षमा प्रगट होती है और अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान क्रोध का अभाव उत्तमक्षमा को पल्लवित करते हैं तथा संज्वलन क्रोध का अभाव उत्तमक्षमा को पूर्णता प्रदान करता है।

अनंत संसार का अनुबंध करनेवाला अनंतानुबंधी क्रोध आत्मा के प्रति अरुचि का नाम है। ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा की अरुचि ही अनंतानुबंधी क्रोध है।

जब हमें किसी व्यक्ति के प्रति अनंत क्रोध होता है तो हम उसकी शक्ल भी देखना पसंद नहीं करते, उसकी बात करना-सुनना पसंद नहीं करते। कोई तीसरा व्यक्ति उसकी चर्चा हमसे करे तो हमें वह भी बर्दाश्त नहीं होती, उसकी प्रशंसा सुनना तो बहुत दूर की बात है।

इसीप्रकार जिन्हें आत्मदर्शन की रुचि नहीं है, जिन्हें आत्मा की बात करना-सुनना पसंद नहीं है, जिन्हें आत्मचर्चा ही नहीं, आत्मचर्चा करनेवाले भी नहीं सुहाते; वे सब अनंतानुबंधी के क्रोधी हैं-क्योंकि उन्हें आत्मा के प्रति अनंत क्रोध है, तभी तो उन्हें आत्मचर्चा नहीं सुहाती।

हमने पर को तो अनंत बार क्षमा किया, पर आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! एक बार अपनी आत्मा को भी क्षमा कर दे, उसकी ओर देख, उसकी भी सुध ले। अनादि से पर को परखने में ही अनंतकाल गमाया है। एक बार अपनी आत्मा को भी देख, जान, परख; सहज ही उत्तमक्षमा तेरे घट में प्रगट हो जावेगी।

आत्मा का अनुभव ही उत्तमक्षमा की प्राप्ति का वास्तविक उपाय है। क्षमास्वभावी आत्मा का अनुभव करने पर, आश्रय करने पर ही पर्याय में उत्तमक्षमा प्रगट होती है।

आत्मानुभवी सम्यग्दृष्टि ज्ञानीजीव को उत्तमक्षमा प्रगट होती है और आत्मानुभव की

वृद्धिवालों को ही उत्तमक्षमा बढ़ती है तथा आत्मा में ही अनंतकाल को समा जानेवालों में उत्तमक्षमा पूर्णता को प्राप्त होती है।

अविरतसम्यग्दृष्टि, अणुव्रती, महाव्रती और अरहंत भगवान में उत्तमक्षमा का परिमाणात्मक (Quantity) भेद है, गुणात्मक (Quality) भेद नहीं। उत्तमक्षमा दो प्रकार की नहीं होती, उसका कथन भले दो प्रकार किया जाये; उसको जीवन में उतारने के स्तर तो दो से भी अधिक हो सकते हैं। निश्चयक्षमा और व्यवहारक्षमा कथन-शैली के भेद हैं, उत्तमक्षमा के नहीं। इसीप्रकार अविरतसम्यग्दृष्टि की क्षमा, अणुव्रती की क्षमा, महाव्रती की क्षमा, अरहन्त की क्षमा - ये सब क्षमा को जीवन में उतारने के स्तर के भेद हैं, उत्तमक्षमा के नहीं; वह तो एक अभेद है।

उत्तमक्षमा तो एक अकषायभावरूप है, वीतरागभावस्वरूप है, शुद्धभावरूप है। वह कषायरूप नहीं, रागभावस्वरूप नहीं, शुभाशुभभावरूप नहीं; बल्कि इनके अभावरूप है।

क्षमास्वभावी आत्मा के आश्रय से समस्त प्राणियों को उत्तमक्षमा धर्म प्रगट हो, और सभी अतीन्द्रिय ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा का अनुभव कर पूर्ण सुखी हों, इसी पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ।

दीपावली

कुन्दकुन्दाचार्य के प्रवचनसार परमागम की गाथा २७२ पर प्रवचन करते हुए बीच में दीपावली का पावन प्रसंग आ जाने पर पूज्य गुरुदेवश्री ने उसके संबंध में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये, जिन्हें दीपावली के पावन प्रसंग पर आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों के लिये यहाँ दिया जा रहा है।

स्वतत्त्व की स्वीकृति द्वारा ज्ञानज्योतिरूपी दीपक प्रज्वलित करना एवं राग से विभक्त और स्वभाव से एकत्व के सम्यक्बोध स्वरूप निर्मल विवेकरूपी दीपक के प्रकाश द्वारा आत्मा को प्रकाशित करना; वह ही सच्ची दीपावली है।

आज से २५०३ वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा १४ की पिछली रात्रि में चार अघातिकर्मों का क्षय करके अरिहंत भगवान महावीर, सिद्ध परमात्मदशा को प्राप्त हुए। जब केवलज्ञान हुआ तभी भगवान को भावमोक्ष प्रगट हो गया था, आज सकल कर्मकलंकरहित परमश्रीरूपी मुक्ति-कामिनी के वल्लभ हुए।

अहा! वस्तु का स्वरूप तो देखो? जिस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए, उसी समय वे लोकाग्र में - लोक के शिखर पर विराजमान हो गये। जिस समय निर्वाण, उसी समय लोक के असंख्य प्रदेशों का उल्लंघन, और उसी समय लोक-शिखर पर स्थिति। समय एक और घटनाएँ तीन!! भगवान ने केवलज्ञान में देखा है, इसलिये ऐसा है, यह बात नहीं है; परंतु वस्तु का ऐसा ही कोई गहन स्वरूप है और जैसा स्वरूप है, वैसा ही भगवान ने देखा-जाना है।

देखो तो सही! एक क्रियावतीशक्ति में कितनी शक्ति है। एक ही समय में तीन घटनाएँ!! ऐसी तो अनंत शक्तियाँ तुझ में भरी पड़ी हैं, परंतु तुझे उनका विश्वास कहाँ है! एक बार जब तुझे अपने अनंत शक्ति के नाथ परमात्मा की महिमा आये, विश्वास आये, तभी तूने दीपावली पर्व यथार्थ रूप में मनाया है और तभी जैसी परमात्मज्योतिरूप दीपावली भगवान महावीर ने अपनी परिणति में प्रगट की, वैसी दीपावली तेरे आत्मा में भी प्रगट होगी।

२५०३ वर्ष पूर्व आज के दिन भगवान महावीर सिद्ध परमात्मदशा को प्राप्त हुए। देखो, जीव के वीर्य की दशा? यही भगवान महावीर ऋषभदेव भगवान के समवसरण (मरीचि के भव में) में होने पर भी विपरीत पुरुषार्थ से असंख्य अरब वर्षों तक अनेक कुगतियों में भटकते फिरे; पश्चात् दसवें सिंह के भव में हिरण को मारते समय मुनिराज के दर्शन और उपदेश से भवान्तकारी निर्मल परिणति को प्राप्त हुए। मरीचि के भव में साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि सुनने पर भी अपने आत्मा को न पहिचान सके और सिंह जैसी क्रूर – हिंसक तिर्यंचदशा में आत्मदर्शन कर लिया...।

यहाँ भी उपादानकारण की ही सिद्धि हुई। साक्षात् दिव्यध्वनि, मनुष्य पर्याय एवं राजपाट का त्याग होने पर भी सम्यग्दर्शन प्राप्त न कर सके और तिर्यंचगति, हिंसा के परिणाम तथा मनुष्य की भाषा समझना भी कठिन – ऐसी स्थिति में आत्मा और राग की भिन्नता का भान हो गया।

अनंत शक्तिधारी आत्मतत्त्व सदैव विद्यमान है। पुरुषार्थ-स्वभावी ही आत्मा है, उसको स्वीकार किया कि आत्मा प्रत्यक्ष हो गया। अहो! जीव के पुरषार्थ को भी बलिहारी है।

अहा! मुनिराज ने किस भाषा में उपदेश दिया होगा? .....और सिंह वह भाषा कैसे समझ सका होगा? आकाश में से दो मुनिराज सिंह को उपदेश देने के लिये नीचे उतर रहे हैं और सिंह उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है कि – अरे! मुझ से तो सब दूर भागते हैं... और ये दो मनुष्य निर्भयतापूर्वक मेरे सामने आ रहे हैं। यह कैसा आश्चर्य है! इसप्रकार आश्चर्य में पड़ा है। इतने में मुनिराज निकट आकर कहते हैं कि – अरे सिंह! दसवें भव में तू चौबीसवाँ तीर्थंकर भगवान महावीर होनेवाला है... क्या ये क्रूर हिंसक परिणाम तुझे शोभा देते हैं? यह सिंह – तिर्यंच तू नहीं है, यह गति तुझमें नहीं है, तू तो अतीन्द्रिय आनंद का नाथ त्रिकाल मुक्तस्वभावी आत्मा है; तू सिंह नहीं परंतु ज्ञानानंदमय चैतन्यप्रभु है। अनिमेष नेत्रों से उत्सुकतापूर्वक सुनते हुए सिंह की आत्मवृत्ति जाग उठी और आँखों से पश्चाताप के आँसू बह निकले। एक क्षण पूर्व जिसकी तीव्र हिंसक वृत्ति थी, वही सिंह सरल भाव से विचार में पड़ गया कि मैं परमेश्वर हूँ।....और उल्लसित होकर वह अंतर की गहराई में उतर गया... वहाँ मुनिराज ने कहा था, वैसा ही स्वरूप अनुभव में आया। अरे! एक क्षण पूर्व का माँसाहारी हिंसक जीव धर्मात्मा ज्ञानी बन गया। यही वीतराग जैनधर्म की – वस्तु-स्वभाव की महानता है

कि क्षण भर पहिले का पापी क्षण भर पश्चात् आत्मदर्शी बन जाता है, क्योंकि उसमें उसकी परमेश्वरता विद्यमान है। भाई, एक बार पलटकर ऐसी परमेश्वरता की महिमा तो ला, तुझे उसका प्रगट अनुभव होगा।

आज भगवान महावीर का निर्वाण दिन है और यहाँ प्रवचनसार की २७२वीं गाथा में भी 'मोक्षतत्त्व' की बात आयी है कि संपूर्ण श्रामण्ययुक्त साधु शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त होता है।

अजधाचारविजुत्तो जधत्थपदणिच्छिदो पसंतप्पा।
अफले चिरं ण जीवदि इह सो संपुण्णसामण्णो॥२७२॥

जो यथार्थतया पदों का तथा अर्थों का निश्चयवाला होने से प्रशांतात्मा है और अयथाचार रहित है, वह संपूर्ण श्रामण्यवाला जीव अफल इस संसार में चिरकाल तक नहीं रहता।

साधु कैसे होते हैं? तो कहते हैं कि – तीन लोक के शिखामणि समान, राग से विभक्त और स्वभाव से एकत्वस्वरूप आत्मतत्त्व प्रकाशक ऐसा निर्मल विवेकरूपी दीपक जिनके प्रगट हुआ है, वे साधु हैं। वे स्वरूप मंथर अर्थात् स्वरूप के आनंद में पूर्ण तृप्त होने के कारण उसमें से बाहर निकलने के आलसी हैं। अपने पुरुषार्थ से अकषायस्वभाव में वर्तते हुए एक स्वरूप में ही अभिमुख रूप से विचरते हैं। नित्यस्वभाव के उग्र आश्रय द्वारा जिन्होंने पूर्व के समस्त कर्मों के फल को नष्ट किया है और नवीन कार्यों को जो उत्पन्न नहीं करते, उन्हें संपूर्ण श्रामण्य होने के कारण ऐसे साक्षात् श्रमण को – साधु को 'मोक्षतत्त्व' जानना।

ऐसे श्रमण को मोक्षतत्त्व क्यों कहा? क्योंकि स्वभावदृष्टिपूर्वक उग्र पुरुषार्थ द्वारा पूर्व कार्य के फल को नष्ट कर दिया है और नवीन कर्म उत्पन्न नहीं करते, इसलिये पुनः प्राण धारण करनेरूप दीनता का उनके अभाव वर्तता है। शरीर धारण करना, वह तो दीनता है – भिखारीपना है। राजा होकर कूड़े के ढ़ेर में से काँच के टुकड़े बीने तो? उसीप्रकार अनंत शक्ति का स्वामी शरीर धारण करे, वह दीनता है। ऐसी दीनता जिनके नहीं रही अर्थात् पुनः शरीर धारण करनेरूपी कलंक को जिन्होंने धो डाला है, ऐसे उन श्रमण को विभावभावरूप परावर्तन का अभाव वर्तता होने से एकमात्र शुद्ध स्वभाव में ही स्थिर हुए होने से उन श्रमण को 'मोक्षतत्त्व' जानना। ●●

ज्ञान और वैराग्य

सम्माननीय बहिन श्री चंपाबेन द्वारा समय-समय पर अभिव्यक्त उनके ही कुछ विचार-बिन्दु आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों के लिये यहाँ प्रस्तुत हैं।

❀ ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देनेवाले हैं। वास्तव में ज्ञानशून्य वैराग्य वह वैराग्य नहीं, अपितु रुंधी हुई कषाय है। परंतु ज्ञान नहीं होने से जीव कषाय को पहिचान नहीं सकता है। ज्ञान स्वयं वैराग्य की मस्ती को पहिचानता है और वैराग्य है, वह ज्ञान को कहीं भी फँसने नहीं देता, परंतु सबसे निस्पृह और अपनी मौज में ज्ञान को टिकाए रखता है। ज्ञानसहित का जीवन नियम से वैराग्यमय ही होता है।

❀ ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी का अंदर में सिंचन करने से अमृत मिलेगा, तेरे सुख का फुंवारा छूटेगा; राग का सिंचन करने से दु:ख मिलेगा। इसलिये ज्ञान-वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके मुक्ति सुखरूप अमृत की प्राप्ति कर।

❀ दृष्टि के जोर में राग, वह विष है, काला सर्प है। यद्यपि आसक्ति को लेकर ज्ञानी बाह्य में थोड़ा खड़ा हुआ है, राग है; तथापि दृष्टि के जोर में काला सर्प दिखायी देता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी वे विभाव से पृथक् भिन्न हैं।

❀ सम्यग्दृष्टि को आत्मा को छोड़कर बाह्य में कहीं भी अच्छा नहीं लगता है, जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्य की महिमा और रस लगा है, उसे बाह्य विषयों का रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुंदर अथवा अच्छा नहीं लगता है। अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अंदर स्वरूप में रहा नहीं जा सकता, इसलिये उपयोग बाह्य में आ जाता है; परंतु रस बिना सब नि:सार छिलके समान, रसकस बिना का हो, ऐसे भाव से बाह्य में खड़े हैं।

❀ सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी कार्य में खड़े होने पर भी लेप नहीं लगता, निर्लेप रहता है। ज्ञानधारा और

उदयधारा दोनों भिन्न परिणमन करती हैं। अल्प अस्थिरता है, वह अपने पुरुषार्थ की कमजोरी से होती है, उसका भी ज्ञाता रहता है।

❀ यथार्थ रुचिसहित के शुभभाव वैराग्य और उपशम-रस से भीगे हुए होते हैं। तथा यथार्थ रुचि से शून्य के वे ही शुभभाव रूखे और चंचलतावाले होते हैं।

❀ निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन सुहाता नहीं। शरीर का रोग मिटना हो तो मिटे, किंतु उसके लिए प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहर का कार्य उपाधिरूप लगते हैं, रुचिकर नहीं लगते।

❀ शरीर, शरीर का कार्य करता है; आत्मा, आत्मा का कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं। उसमें 'यह शरीरादि मेरे हैं' ऐसा मानकर सुखी-दुःखी न हो, ज्ञाता हो जा। देह के लिए अनंत भव व्यतीत हुए। अब संत कहते हैं कि तेरी आत्मा के लिए यह जीवन समर्पित कर।

❀ ज्ञानी को दृष्टि अपेक्षा से चैतन्य और राग की अत्यंत भिन्नता प्रतीत होती है। यद्यपि वह ज्ञान में जानता है कि राग चैतन्य की पर्याय में होता है।

❀ जिसे वास्तविक उताप लगा हो, जो संसार से क्रांत हुआ हो, उसकी यह बात है। विभाव से थकावट हो और संसार का त्रास लगे तो मार्ग मिले बिना रहे ही नहीं। कारण देने पर कार्य अवश्य प्रगट होता ही है। जिसे जिसकी रुचि-रस हो, उसमें समय व्यतीत हो जाता है। 'रुचि अनुयायी वीर्य', ज्ञायक के घोलन में निरंतर रहे, दिन-रात उसके पीछे लगे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना रहे ही नहीं।

❀ हे जीव! तुझे कहीं भी न सुहाता हो तो तेरे उपयोग को पलट दे... और आत्मा में सुहाये ऐसा यत्न कर। .....आत्मा में आनंद भरा हुआ है, वहाँ अवश्य सुहायेगा.....। इसलिये तू आत्मा में सुहाये, ऐसा उद्यम कर।

❀ अहो! इस अशरण संसार में जन्म के साथ मरण हुआ जुड़ा हुआ ही है। आत्मा की सिद्धि न हो, तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहेगा। ऐसे अशरण संसार में देव-गुरु-धर्म का ही शरण है। पूज्य गुरुदेव द्वारा बतलाये गये चैतन्य शरण को

लक्ष्यगत कर उसके दृढ़ संस्कार आत्मा में अंकित हो जायें – यही जीवन में करने योग्य है।

❀ जिसप्रकार वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ में आ जाता है; उसीप्रकार ज्ञायकभाव को पकड़ने से सब हाथ आ जायेगा, शुभपरिणाम करने से कुछ भी हाथ नहीं आयेगा। यदि मूलस्वभाव को पकड़ लिया होगा तो चाहे जैसा प्रसंग आ जाये, उस समय में भी शांति–समाधान रहेगा, ज्ञाता–दृष्टापने रह सकेगा।

❀ मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, किसी परपदार्थ की लालसा नहीं, आत्मा ही चाहिये – ऐसी जिसको तीव्र तमन्ना हो, उसे अवश्य मार्ग मिलता ही है। अन्दर में चैतन्यऋद्धि है, उस ऋद्धि सम्बन्धी विकल्प में भी वह रुकता नहीं है; ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे मेरा अस्तित्व चाहिये। ऐसी अन्दर में जाने की तीव्र तमन्ना हो तो आत्मा प्रगट होता है, प्राप्त होता है।

❀ ऊपर–ऊपर पठन–विचारादि से कुछ भी नहीं होता, अन्दर हृदय में से भावना उत्पन्न हो तो मार्ग सरल होता है। ज्ञायक के अंत:स्थल में से अत्यंत महिमा उत्पन्न होना चाहिये।

❀ ज्ञान को धैर्ययुक्त करके सूक्ष्मता से अंतरंग में देखे तो आत्मा पकड़ में आ जाये ऐसा है। एक बार विकल्प की जाल तोड़कर अन्दर से पृथक् हो जा... पुन: जाल चिपकेगी नहीं।

❀ अनंत–काल से जीव को अशुभभाव की आदत हो गयी है। अत: उसे अशुभभाव सहज हैं तथा शुभ को बारंबार करने से शुभभाव भी सहज हो जाते हैं। परंतु अपना स्वभाव जो वास्तव में सहज है, वह जीव को ख्याल में नहीं आता। उपयोग को सूक्ष्म कर सहज स्वभाव को पकड़ना चाहिये।

❀ जो प्रथम उपयोग का पलटा करना चाहता है परंतु अंतरंग में रुचि को पलटता नहीं है, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि का पलटा करे तो उपयोग का पलटा सहज हो जायेगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।

❀ आत्मा को प्राप्त करने का जिसने दृढ़ निश्चय किया है, उसको प्रतिकूल संयोग में भी

तीव्र कड़ा पुरुषार्थ अवश्य उठाना ही चाहिये। सद्गुरु के गंभीर एवं मूल वस्तुस्वरूप समझ में आ जाये ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का यथार्थ मर्म मुमुक्षु बहुत गहरा मंथन करके मूल मार्ग को शोध लेता है।

❀ सही तमन्ना हो तो मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता है। जितना कारण देवे, उतना कार्य होता ही है। अंतरंग वेदनसहित भावना हो तो वह मार्ग शोध लेता है।

❀ यथार्थ रुचिसहित के शुभभाव वैराग्य और उपशमरस से भोगे हुए होते हैं तथा यथार्थरुचि से शून्य वे ही शुभभाव रूखे और चंचलतावाले होते हैं।

❀ मुझे इसकी सही आवश्यकता है, ऐसी रुचि हो तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहे। उसे चौबीस घंटे एक ही चिंतन, घोलन, खटक चालू रहती है। जिसप्रकार किसी को 'माँ' का प्रेम होता है तो उसे माँ की याद, उसकी खटक निरंतर रहा ही करती है; उसीप्रकार जिसे आत्मा का प्रेम होता है, वह चाहे शुभ में उल्लास से भाग लेता हो, तथापि अंतरंग में खटक तो आत्मा की ही होती है। 'माँ' का प्रेमवाला चाहे कुटुम्ब के समूह में बैठा हो, आनंद करता हो, परंतु मन तो 'माँ' में ही रहा होता है। 'अरे! मेरी माँ... मेरी माँ।' उसीप्रकार आत्मा की खटक रहना चाहिये। चाहे जैसे प्रसंग में 'मेरा आत्मा... मेरा आत्मा'। यही खटक और रुचि रहना चाहिये। ऐसी खटक रहा करे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना रहे नहीं।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

यहाँ गाथा के उत्तरार्द्ध में भगवान को नमस्कार किया, उसमें चार प्रयोजन हैं। (१) नास्तिकता का त्याग (२) उत्तम पुरुषों के विनय का पालन (३) पुण्य की प्राप्ति (४) विघ्नरहितपना।

देखिये! प्रिय पुत्र दूर हो तो माता-पिता उसको याद करते हैं, वैसे यहाँ सर्वज्ञता का विरह है। यहाँ साधक जीव सर्वज्ञ भगवान को बहुमानपूर्वक स्मरण कर नमस्कार करता है कि हे नाथ! मेरी साधकदशा में मुझे शास्त्र रचना का विकल्प उठा है, हुआ है, उसमें आपको याद करता हूँ। मेरी सर्वज्ञता को साधने में विघ्न न आये और शास्त्र रचना में भी बीच में विघ्न आये; मेरी परमात्मदशा के बीच में विघ्न न आये, इसप्रकार सर्वज्ञदेव को नमस्कार कर मंगलाचरण किया है।

शास्त्र के आरंभ में ६ चीजें कही जाती हैं। (१) मंगल - यहाँ द्रव्यसंग्रह के पहिले सूत्र में - गाथा में मंगलाचरण चलता है, उसमें ऐसा कहा है कि भगवान तीर्थंकरदेव को भावस्तवन से और द्रव्यस्तवन से वंदन करताा हूँ। भगवान कैसे हैं? देवेन्द्रों के समूह से वंदनीय हैं, जिनवरों में श्रेष्ठ हैं, ऐसे भगवान ने जीव-अजीव द्रव्यों का स्वरूप कहा है। इसप्रकार स्वयं के अभीष्ट, अधिकृत और अभिमत ऐसे भगवान को नमस्कार किया है। अभीष्ट स्वयं को इष्ट प्रिय, अधिकृत अर्थात् नमस्कार करनेयोग्य ऐसे उत्तम, अभिमत अर्थात् स्वयं को संमत है। ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा को नमस्कार कर मंगलाचरण किया।

(२) शास्त्र बनाने-रचने का निमित्त कारण पहले कहा कि सोम सेठ के निमित्त यह शास्त्र रचा है। (३) प्रयोजन - मूल प्रयोजन तो सहजानंदमूर्ति ज्ञायक आत्मा का निर्विकल्प अनुभव करना इस शास्त्र का प्रयोजन है। (४) शास्त्र के श्लोक-गाथा की संख्या ५८ है, यह उसका परिमाण है। (५) शास्त्र का नाम द्रव्यसंग्रह है। (६) शास्त्र के कर्ता श्री नेमिचंद्र

सिद्धांतचक्रवर्ती हैं। इसप्रकार शास्त्र का मंगल, निमित्त, प्रयोजन, परिमाण, नाम और कर्ता ये छह बातें कहीं।

ज्ञानदर्शनमय शुद्ध चिदानंद निर्मल आत्मस्वभाव है। उसके स्वरूप को विस्तार से कहनेवाली इस शास्त्र की जो टीका है, व्याख्यान है, परमात्मस्वरूप के प्रतिपादक ५८ मूलसूत्र हैं, वे व्याख्या करनेयोग्य हैं। देखो, यहाँ तो कहा कि सभी सूत्र परमात्मा के स्वरूप के प्रतिपादक हैं। भले ही अजीव द्रव्यों का भी वर्णन आयेगा, किंतु उसका ज्ञायक तो आत्मा है।

पुण्य-पाप से दूर ज्ञायक मूर्ति परमात्मा का प्रतिपादन करनेवाले सूत्र हैं, वे व्याख्या करनेयोग्य हैं; और टीका द्वारा उसका विस्तार से विवेचन किया है, वह व्याख्यान है; और व्याख्या करनेयोग्य इस द्रव्यसंग्रह के जो सूत्र हैं, वे तो 'अभिधान' अर्थात् वाचक शब्द हैं; और शब्दों द्वारा कहने योग्य अनंत ज्ञानादि गुणों के धारक जो चिदानंद परमात्मा हैं, वे 'अभिधेय' हैं। इसप्रकार इस शास्त्र को और चिदानंद परमात्मस्वरूप को 'अभिधान-अभिधेय' संबंध है।

अभिधेय अर्थात् शास्त्र का विषय क्या है ? कि अनंत ज्ञानादि अनंत गुणों के धारक ऐसे शुद्ध परमात्मा, वे अभिधेय हैं। शास्त्र पढ़-पढ़कर क्या निकालना - ग्रहण करना ? कि शुद्ध, ज्ञानादि अनंत गुण मूर्ति आत्मा है, उसको पहिचानना।

इस शास्त्र का प्रयोजन क्या है ? इसे तीन प्रकार से कहते हैं :-

(१) व्यवहार से तो जीवादि छह द्रव्यों को भिन्न-भिन्न जानना, यह प्रयोजन है।

(२) निश्चय से उसका प्रयोजन तो स्वयं के निर्लेप शुद्ध आत्मा के ज्ञान से उत्पन्न जो परमानंदरूपी सुख के आस्वादरूप ऐसा स्वसंवेदन, वही प्रयोजन है।

देखो, पर को जानना, यह तो व्यवहार में गया, किंतु छह द्रव्यों को जानकर स्वयं के शुद्ध चिदानंद-स्वभाव के सहज आनंद का अनुभव करना, यही निश्चय प्रयोजन है; बीच में पुण्य के परिणाम हों और स्वर्ग मिले, वह प्रयोजन नहीं। छह द्रव्यों का ज्ञान करना, वह व्यवहार प्रयोजन है। आत्मा के परमआह्लादरूप जो वीतरागी आनंद, उसका ज्ञान करना, वह निश्चय प्रयोजन है। ऐसी दो बातें कहीं।

(३) परम शुद्ध निश्चय से स्वसंवेदन आत्म-ज्ञान के फलरूप जो अनंत सुखमयदशा-

मुक्तदशा की प्राप्ति होना, वह प्रयोजन है। उस अनंत सुख की प्राप्ति केवलज्ञान वगैरह अनंत गुण बिना नहीं होती, और स्वयं के आत्मा के उपादान से ही उस अनंत सुख की सिद्धि है। कोई निमित्त से उसकी प्राप्ति नहीं होती। वैसे ही शुभाशुभभावों से भी परम सुख की प्राप्ति नहीं होती। देखो, अनंत सहजानंदमय जो मुक्तदशा है, वही परम निश्चय से इस शास्त्र का प्रयोजन है। तीन प्रकार से प्रयोजन की बात की, लेकिन उसमें कहीं भी राग का प्रयोजन नहीं कहा।

जीवादि छह द्रव्य भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं, जीव का विकार जीव से है, अजीव कर्म के लिये विकार नहीं, ऐसा भिन्न-भिन्न जाने, तब तो अभी शास्त्रों का व्यवहार प्रयोजन समझना कहा जाता है।

छह द्रव्यों की भिन्नता का जिसे ज्ञान भी नहीं और जीव के लिये अजीव की क्रिया होती है, ऐसा माने, तथा अजीव के लिये जीव को विकार होता है, ऐसा माने, तो वह जीव शास्त्रों के व्यवहार प्रयोजन को भी समझा नहीं।

देखो, सर्वज्ञ वीतराग की वाणी में छह द्रव्य कहे हैं। इन छह द्रव्यों में से कोई भी एक द्रव्य को जो छोड़ दें तो वह सर्वज्ञ का कथन नहीं। सर्वज्ञदेव की वाणी में छह द्रव्यों में से एक भी द्रव्य को नहीं छोड़ा। विश्व में छह द्रव्य हैं और प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की ऋद्धिवाला है, ऐसा जानना, यह तो अभी भी व्यवहार ज्ञान है। निश्चय प्रयोजन तो यह है कि आत्मा के सहज स्वभाव सुख का ज्ञान करना और आत्मज्ञान का फल केवलज्ञानादि अनंत गुण सहित जिस अनंत सुख की प्राप्ति हुई; यह इस शास्त्र का परम निश्चय प्रयोजन है। इसप्रकार नमस्कार-गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ ॥१॥

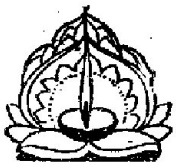

वंदित्तु सव्व सिद्धे

आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार के मंगलाचरण पर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मंगलाचरण इसप्रकार है :-

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्दामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं॥१॥

ध्रुव, अचल और अनुपम - इन तीन विशेषणों से युक्त गति को प्राप्त हुए सर्व सिद्धों को नमस्कार करके मैं श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित यह समयसार नामक प्राभृत कहूँगा।

आचार्यदेव ने अपने में सिद्धत्व की स्थापना करके यह अपूर्व मंगलाचरण किया है। मानों वे कहते हैं - अहो! सिद्ध भगवान मेरे हृदय में विराजिए, मैं आपका आदर करता हूँ। मैं अपनी आत्मा को सिद्धसमान स्वीकार करके अपने में सिद्धत्व की स्थापना करता हूँ।

साधकधर्म की शुरुआत को मांगलिक कहते हैं। शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगटे, वह साधकधर्म का प्रारंभ है। अपने और श्रोताओं के आत्मा में अनंत सिद्धों की स्थापना करके, आचार्यदेव ने सर्व सिद्धों को भाव तथा द्रव्यनमस्कार करके इस 'समयप्राभृत' परमागम की रचना प्रारंभ की है।

यहाँ मंगलाचरण की प्रथम गाथा में सिद्धगति की पर्याय की बात है। ध्रुव, अचल और अनुपम ऐसे विशेषणों से युक्त मोक्षगति को प्राप्त सर्वसिद्धों को नमस्कार करके केवली तथा श्रुतकेवली द्वारा कथित समयप्राभृत को मैं कहता हूँ। देखो! आचार्यदेव कहते हैं कि भावस्तुति तथा द्रव्यस्तुति से अपने आत्मा में, तथा श्रोताओं के आत्मा में सर्व सिद्धों की स्थापना करके इस ग्रंथ की रचना करूँगा। अल्पज्ञता होते हुए भी मैं उसका आदर नहीं करता परंतु आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना करके उसका आदर करता हूँ।

हे श्रोता! तू भी अपनी पर्याय में वर्तती अल्पज्ञता को गौण करके अपने आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना कर। राग की रुचि छोड़कर हमारी बात सुन, तुझे पर्याय में सिद्धत्व अवश्य प्रगट होगा; अत: पहले से ही सिद्धत्व का सत्कार करता हुआ चला आ। शुद्धात्मा में प्रवृत्त होता हुआ मैं यह मोक्ष अधिकारी अपने प्रचुर स्वसंवेदनपूर्वक निज-आत्मवैभव दिखा रहा हूँ, उसे अपूर्वभाव से उल्लसित वीर्य से प्रमाण करना।

राजा, महाराजा या बड़े सेठों को विवाह में आमंत्रित करते हैं, उसीप्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि अपनी ज्ञान-पर्याय के आँगन में हम सर्व सिद्धों को आमंत्रित करते हैं। हमें सिद्धों से लगन लागी है। सिद्ध तो ऊपर से नीचे नहीं आते परंतु मैं अल्पकाल में सिद्ध हो जाऊँगा। 'वंदित्तु' का अर्थ ही यह है कि ज्ञानपर्याय में साध्य ऐसे सिद्धत्व की स्थापना, सत्कार, स्वीकार; वही सच्चा नमस्कार है। जिसे शुभराग का आदर है, वह सिद्धों को सच्चा नमस्कार भी नहीं कर सकता।

'मैं' मन-वचन-काय एवं शुभाशुभवृत्ति से भिन्न हूँ। इसप्रकार शुद्धात्मा की ओर उन्मुख होकर तथा रागवृत्ति से हटकर अंतरंग में स्थिर होना, यह भावस्तुति है। शुभभावरूप स्तुति करना, द्रव्यस्तुति है।

इसमें यह बात भी आ गई कि मात्र शास्त्र वाँचना निमित्त नहीं, प्रत्यक्ष गुरुगम होना चाहिये। गुरु कहते हैं कि जो तू हमें गुरु मानता हो, शास्त्र को मानता हो और सुनने की पात्रता हो तो पहले धड़ाके में ही 'मैं सिद्ध हूँ' ऐसा निर्णय कर। वर्तमान राग और अल्पज्ञता का अभाव करना हो तो प्रथम भूमिका में ही अपने में सिद्धत्व की स्थापना कर। कुदेवादि का आदर और लक्ष्मी की प्रीति छोड़कर हमारे पास आया है तो हम कहते हैं कि 'तू सिद्ध है।' वर्तमान ज्ञान अल्प है, और कर्म का उदय है; परंतु इनकी दृष्टि छोड़कर सिद्धस्वभाव का निर्णय कर।

भव्य-अभव्य का प्रश्न नहीं। जो तुझे तेरी शंका पड़ी तो तू लायक नहीं, तेरा हित नहीं होगा। तेरी हित करने की भावना ही तेरी पात्रता की प्रतीक है।

इसप्रकार अपने मेंऔर पर में सिद्धत्व की स्थापना करके आचार्यदेव कहते हैं कि मेरी ज्ञानपर्याय भाववचन है और विकल्पपूर्वक वाणी निकलती है, वह द्रव्यवचन है। ज्ञानपर्याय में प्रति समय वृद्धि होती है और शब्द की रचना शब्द के कारण होती है। उन दोनों का निमित्त-

नैमितिकतक संबंध बताया है। आचार्य कहते हैं कि हम भाववचन और द्रव्यवचन से समयनामक प्राभृत का परिभाषण प्रारंभ करते हैं।

द्रव्य के आश्रय से साधकभाव का प्रारंभ हुआ। अनंत काल से कभी प्रगट नहीं हुआ ऐसा साधकभाव का प्रारंभ, वही मांगलिक है। सिद्ध समान निज आत्मा की दृष्टि होने पर वह पर्याय द्रव्य की ओर ढलती है और यही साधकभाव की शुरुआत है।

सिद्ध भगवान, साध्य ऐसा जो आत्मा उसके प्रतिच्छंद के स्थान पर हैं। द्रव्यस्तुति में कहे 'हे सिद्ध परमात्मा!' तब भावस्तुति द्वारा अपने में प्रतिध्वनि होती है 'हे सिद्ध परमात्मा!', इसप्रकार साध्य तो अपना आत्मा ही है परंतु सिद्ध भगवान साध्य के प्रतिच्छंद (आदर्श) के स्थान पर हैं। संसारी जीव, सिद्ध परमात्मा के स्वरूप का चिंतवन करके, उनके समान अपने स्वरूप का ध्यान करके उन जैसे हो जाते हैं।

देखो, प्रथम मांगलिक गाथा में अल्पज्ञता या पामरता को याद नहीं किया। संसारी जीव किसप्रकार सिद्ध होते हैं? तो कहते हैं कि सिद्ध समान त्रिकाली निजस्वरूप को विषय बनाकर जो पर्याय को द्रव्य में एकाग्र करता है, वह चारों गति से विलक्षण पंचम गति (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

कैसी है पंचम गति? स्वभावभावरूप है। यहाँ पर्याय की बात है। सिद्ध भगवान की निर्मल पर्याय स्वभावभावरूप है, इसलिये ध्रुवत्व का अवलंबन करती है अर्थात् ध्रुवरूप ही रहती है। चारों गति पर-निमित्त से उत्पन्न होने से विनाशीक हैं, ध्रुव नहीं; अतः चारों गति की रुचि छोड़कर ध्रुवस्वभाव की रुचि करो। त्रिकाली स्वभाव के अवलंबन से प्रगटी पंचम गति में विनाशीकता का निषेध किया है। सिद्ध की पर्याय में प्रति समय परिणमन तो है ही, परंतु वह गति सादि-अनंतकाल रहती है, अन्य गति में नहीं बदलती; अतः पंचम गति ध्रुवत्व को प्राप्त है।

और वह गति कैसी है? अनादि से परभाव के निमित्त से होनेवाले पर में परिभ्रमण की विश्रांति होने से अचलत्व को प्राप्त है। पुण्य-पाप का भाव विश्रांति-स्थान नहीं। चैतन्य उपयोग में अशुद्धता चलना अपनी भूल और पर-निमित्त से थी, वह अपने स्वभाव की प्रतीति और पुरुषार्थ से सर्वथा नष्ट कर दी गयी, इसलिये अचल गति प्राप्त हुई। पुनः अशुद्धता आनेवाली

नहीं है, इसलिये सिद्धगति अचल है। स्वभाव में चलपना या भ्रमण नहीं, अतः सिद्धपना भी अचल है।

और कैसी है सिद्धगति ? चारों गति में समस्त उपमायोग्य पदार्थों से विलक्षण अद्भुत माहात्म्यवाली होने से जिसे किसी पदार्थ की उपमा नहीं दी जा सकती, अतः अनुपम है। जगत के उपमालायक पदार्थों से तेरा पदार्थ भिन्न है, ऐसा निर्णय करना चाहिये। चार गति में कथंचित् उपमा लागू पड़ती है परंतु सिद्धगति में उपमा लागू नहीं पड़ती।

और कैसी है पंचम गति ? धर्म अर्थात् पुण्य, भक्ति, दया-दान-व्रतादि में कषाय मंदता होना व्यवहार धर्म है, जो कि सिद्धगति में नहीं है। अर्थ अर्थात् लक्ष्मी, काम अर्थात् वासना जिस वर्ग में है, ऐसे त्रिवर्ग में मोक्ष गति नहीं आती, अतः पंचम गति अपवर्ग कही गयी है। सिद्ध भगवंतों ने ध्रुव, अचल, अनुपम और अपवर्ग ऐसी पंचम गति को प्राप्त किया है।

इसप्रकार अपने में और श्रोताओं में सिद्धत्व की स्थापना करके आचार्यदेव कहते हैं कि अनादि से उत्पन्न अपने और पर के मोह के नाश के लिये, अरहंतदेव की वाणी का अंश यह समयप्राभृत प्रारंभ करता हूँ। समयसार के परिभाषण से श्रोताओं का मोह नष्ट हो, इस निमित्त से कथन किया है। शास्त्र का सार वीतरागता है। अंतर में ज्ञान का घोलन करता हूँ, इससे मेरा मोह नष्ट होगा और तूने भी अपने में सिद्धत्व की स्थापना की है, अतः तेरे मोह-राग भी नष्ट होंगे, इसमें शंका न कर।

समय का प्रकाश अर्थात् सर्व पदार्थ अथवा जीव पदार्थ का वर्णन करनेवाला जो प्राभृत अर्थात् सर्वज्ञ भगवान के प्रवचन का अंश है, उसका विवेचन करता हूँ।

यहाँ शास्त्र की प्रामाणिकता बतायी है। केवलज्ञान अनादि-अनंत है, उसीप्रकार परमागम भी अनादि अनंत है। वाणी तो अपने कारण से निकलती है, परंतु केवली भगवान के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। यह शास्त्र दिव्यध्वनि के अनुसार रचा गया है तथा दिव्यध्वनि को साक्षात् सुननेवाले और स्वयं अनुभव करनेवाले श्रुतकेवली, गणधरों द्वारा कथित होने से प्रामाणिक है। अन्यवादियों के आगम के समान छद्मस्थ की कल्पनामात्र नहीं है, जिससे अप्रमाणकि हो। भगवान की वाणी और गणधरों द्वारा कहा हुआ तत्त्व होने से प्रामाणिक है। मैं अपने में सिद्धत्व की स्थापना करके कहता हूँ और तुम भी स्वभाव की रुचि

करके सुनो। इसप्रकार वक्ता, श्रोता और शास्त्र तीनों का लक्षण कह दिया है।

गाथासूत्र में आचार्यदेव ने 'वक्ष्यामि' कहा है, जिसका अर्थ टीकाकार ने वचपरिभाषणे धातु से परिभाषण किया है। उसका आशय इसप्रकार सूचित होता है कि चौदह पूर्व में ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व में बारह वस्तु अधिकार हैं, उनमें प्रत्येक के बीस-बीस प्राभृत अधिकार हैं। उनमें दसवें वस्तु में समय नामक प्राभृत हैं। उसके मूलसूत्रों के शब्दों का ज्ञान तो पहले बड़ आचार्यों को था और उसके अर्थ का ज्ञान आचार्यों की परिपाटी के अनुसार कुन्दकुन्द आचार्यदेव को भी था। उन्होंने समयप्राभृत का परिभाषण किया - परिभाषासूत्र बनाया। सूत्र की दस जातियों में एक परिभाषा जाति भी है। जो अधिकार को अर्थ के द्वारा यथास्थान सूचित करे, वह परिभाषा कहलाती है। आचार्यदेव समयप्राभृत के अर्थ को ही यथास्थान बतानेवाले परिभाषासूत्र रचते हैं। परिभाषण में जीव अधिकार, अजीव अधिकार आदि यथास्थान कहे हैं। प्रत्येक गाथा यथास्थान है। जैसे - चश्मा नाक के ऊपर आँख के सामने यथास्थान रखा जाता है, उसीप्रकार सूत्र भी जहाँ लागू हो, वहीं रखा जाए, यह यथास्थान है। इसप्रकार यथास्थान में रचना होना परिभाषा कहलाती है।

आचार्य ने मंगल के लिये सिद्धों को नमस्कार किया है। संसारी को शुद्ध आत्मा साध्य है। मैं सिद्धसमान हूँ, ऐसा बोले तो सामने वैसी ही प्रतिध्वनि पड़ती है। सिद्ध भगवान आत्मा के स्थान पर हैं। शुद्ध आत्मा का ही लक्ष्य होना चाहिये। सिद्ध साक्षात् शुद्धात्मा हैं, अतः उन्हें नमस्कार करना उचित है।

किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया? इसकी चर्चा टीकाकार के मंगलाचरण में की है, वही यहाँ भी जानना। सिद्धों को सर्व ऐसा विशेषण दिया, अतः सिद्ध भगवान अनंत हैं, ऐसा जानना। एक ही सिद्ध नहीं है, अनंत जीव सिद्ध हो गये। साधकजीव अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करते हैं, साधकभाव का समय असंख्यात समय का है, छह माह और आठ समय में ६०८ जीव सिद्ध होते हैं, अतः अनंत सिद्ध हो गये हैं। कोई सिद्ध दूसरे सिद्ध में मिल नहीं जाते। चिदानंद आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा प्रगट होने के बाद एक-दूसरे में मिल जायें तो सत्ता नष्ट हो जाए, परंतु ऐसा नहीं होता।

सिद्धों का क्षेत्र मर्यादित होते हुए भी अनंत सिद्ध एक साथ रहते हैं। जिसप्रकार अनेक

दीपकों का प्रकाश एक कमरे में रहता है, उसीप्रकार अनंत सिद्ध रहते हैं। ऐसा कहने से 'शुद्धात्मा एक ही है' ऐसा कहनेवाले अन्यमतियों का व्यवच्छेद हो जाता है।

श्रुतकेवली शब्द के अर्थ में, श्रुत का अर्थ अनादि-अनंत प्रवाहरूप आगम है। श्रुतकेवली अर्थात् सर्वज्ञ भगवान के श्रीमुख से निकली हुई वाणी को जाननेवाले गणधरदेव आदि जो श्रुतकेवली हैं, उनसे इस शास्त्र की उत्पत्ति हुई है। मैंने यह कोई कल्पना नहीं की, किंतु अनादि से शुद्ध आम्नायानुसार चला आया प्रवाहरूप आगम जैसा है, उसीप्रकार कहा है। इस परमागम को समझने के लिये अंतरंग का अनुभव चाहिये। वाद-विवाद से पार नहीं आ सकता। सूक्ष्मज्ञान का अभ्यास चाहिये। बाहर से नहीं जाना जा सकता।

इस ग्रंथ में अभिधेय बताते हैं। अभिधेय अर्थात् कहनेयोग्य वाच्यभाव। पवित्र निर्मल असंयोगी शुद्ध आत्मस्वभाव कहने योग्य है, वह वाच्य है और उसे बतानेवाले शब्द वाचक हैं। शब्दों और शुद्धात्मा में वाचक-वाच्य संबंध है। शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति प्रयोजन है। कोई पदवी या लोक-प्रतिष्ठा आदि कोई प्रयोजन नहीं।

प्रथम गाथा में समय का प्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की है। अब शिष्य को जिज्ञासा होती है कि 'हे प्रभु! आप समय किसे कहते हैं?' ऐसी आकाँक्षावाले शिष्य को समय का स्वरूप दूसरी गाथा में कहेंगे।

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न – धर्म क्या है ? अर्थात् साक्षात् मोक्षमार्ग क्या है ?

उत्तर – 'चारित्तं खलु धम्मो' अर्थात् चारित्र वास्तव में धर्म है, वही साक्षात् मोक्षमार्ग है।

प्रश्न – चारित्र का अर्थ क्या है ?

उत्तर – शुद्ध-ज्ञानस्वरूप आत्मा में चरना – प्रवर्तन करना, सो चारित्र है।

प्रश्न – ऐसे चारित्र के लिये प्रथम क्या करना चाहिये ?

उत्तर – चारित्र के लिये प्रथम तो स्व-पर के यथार्थ स्वरूप का निश्चय करना चाहिये, क्योंकि उसमें एकाग्र होना है। वस्तु के स्वरूप का निश्चय किये बिना उसमें स्थिर कहाँ से होगा ? इसलिये प्रथम जिसमें स्थिर होना है, उस वस्तु के स्वरूप का निश्चय करना चाहिये।

प्रश्न – वस्तु के स्वरूप का निश्चय किसप्रकार करना चाहिये ?

उत्तर – वस्तु के स्वरूप का निश्चय इसप्रकार होना चाहिये कि 'इस जगत में, मैं स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ तथा मुझ से भिन्न इस जगत के जड़-चेतन समस्त पदार्थ मेरे ज्ञेय ही हैं। विश्व के पदार्थों के साथ मात्र ज्ञेय-ज्ञायक संबंध से विशेष मेरा अन्य कोई संबंध नहीं है। कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है और न मैं किसी के कार्य को करता हूँ। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव-सामर्थ्य से ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणमन कर रहा है, उसके साथ मेरा कोई संबंध नहीं है।'

जो जीव ऐसा निर्णय करे, वही पर के साथ संबंध तोड़कर उपयोग को निजस्वरूप में लगाता है, इसलिये उसी को स्वरूप में चरणरूप चारित्र होता है। इसप्रकार चारित्र के लिये प्रथम वस्तुस्वरूप का निर्णय करना चाहिये।

प्रश्न – जो जीव वस्तुस्वरूप का यथार्थ निर्णय नहीं करता, उसकी स्थिति क्या होती है ?

उत्तर – जो जीव वस्तुस्वरूप का यथार्थ निर्णय नहीं करता, उसका चित्त 'वस्तुस्वरूप किसप्रकार होगा ?' ऐसे संदेह से सदा डांवाडोल अस्थिर बना रहता है। और स्व-पर के भिन्न-भिन्न स्वरूप का उसे निश्चय न होने के कारण परद्रव्य के कर्तृत्व की इच्छा से उसका चित्त सदा आकुलित बना रहता है। तथा परद्रव्य का उपभोग करने की बुद्धि से उसमें राग-द्वेष के कारण उसका चित्ता सदा कलुषित बना रहता है। इसप्रकार वस्तुस्वरूप के निर्णय बिना जीव का चित्त सदा डांवाडोल और कलुषित रहने से उसकी स्वद्रव्य में स्थिरता नहीं हो सकती। जिसका चित्त डांवाडोल तथा कलुषितरूप से परद्रव्य में ही भटकता हो, उसे स्वद्रव्य में प्रवृत्तिरूप चारित्र कहाँ से होगा ? – नहीं हो सकता। इसलिये जिसे पदार्थ के स्वरूप का निर्णय नहीं, उसे चारित्र नहीं होता।

प्रश्न – पदार्थ के स्वरूप का निर्णय करनेवाला जीव कैसा होता है ?

उत्तर – वह जीव अपने आत्मा का कृतनिश्चय, निष्क्रिय तथा निर्भोग देखता है। उसे स्व-पर के स्वरूप संबंधी संदेह दूर हो गया है। परद्रव्य की किसी भी क्रिया को वह आत्मा की नहीं मानता तथा अपने आत्मा को परद्रव्य में प्रवृत्तिरूप क्रिया से रहित – निष्क्रिय देखता है; परद्रव्य के उपभोग रहित निर्भोग देखता है। ऐसे अपने स्वरूप को देखता हुआ वह जीव सन्देह तथा व्यग्रतारहित होता हुआ निजस्वरूप में एकाग्र होता हुआ निजस्वरूप में एकाग्र होता है। निजस्वरूप की धुन का धुनी होकर उसमें स्थिर होता है। इसप्रकार वस्तुस्वरूप निर्णय करनेवाले को ही चारित्र होता है।

प्रश्न – मोक्षमार्ग की साधक मुनिदशा किसे होती है ?

उत्तर – उपरोक्तानुसार वस्तुस्वरूप का निश्चय करके उसमें जो एकाग्र होता है, उसी को श्रामण्य होता है।

प्रश्न – श्रामण्य का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर – श्रामण्य का दूसरा नाम है मोक्षमार्ग। जहाँ मोक्षमार्ग है, वहीं श्रामण्य है। जिसे मोक्षमार्ग नहीं है, उसे श्रामण्य भी नहीं है।

महापर्व दशलक्षण समाचार

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ की ओर से दशलक्षण महापर्व के अवसर पर ७५ विद्वान् प्रवचनार्थ भारतवर्ष के विभिन्न नगरों में भेजे गये थे। स्थान-स्थान से निरंतर समाचार आ रहे हैं, जिनमें उनके द्वारा हुई धर्म प्रभावना की चर्चा के साथ-साथ सारे देश में एक आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर देने के लिये पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के प्रति अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की गयी है तथा साथ ही स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के प्रति आभार व्यक्त किया है। स्थानाभाव के कारण प्राप्त विस्तृत समाचारों को देना संभव नहीं है, फिर भी कतिपय प्रमुख नगरों के संक्षिप्त समाचार यहाँ दिये जा रहे हैं :-

अहमदाबाद : आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित खीमजीभाई जेठालाल शेठ के पदार्पण से स्थानीय समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। आपकी सरल आकर्षक-बोलों वाली शैली एवं अपूर्व तत्त्व-प्रतिपादनमय रोचकता से सारा समाज अत्यधिक प्रभावित हुआ। अहमदाबाद से आप हिम्मतनगर तथा तलोद भी गये। सभी स्थानों पर पर समाज धर्मलाभ के लिये अधिकाधिक संख्या में आती थी। तत्त्व-जिज्ञासु मंत्रमुग्ध होकर प्रवचन सुनते थे।

- मंत्री, मुमुक्षु मण्डल, अहमदाबाद

कोटा : बम्बई निवासी पंडित हिम्मतभाई जोबालिया के पधारने से बहुत-बहुत धर्म प्रभावना हुई। आपने प्रातः समयसार पर, रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक पर सुमधुर शैली में मनमोहक प्रवचन किये - जिनमें कर्ता-कर्म संबंधी, निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला। दोपहर में ३ से ४ तक शंका समाधान भी रखा गया था।

—लालचंद जैन, मंत्री, श्री वीरसंघ

खुरई : प्रख्यात लोकप्रिय प्रवक्ता पंडित बाबूभाई के पधारने से अद्‌भुत आनंद आया। आपके प्रवचन प्रातः, दोपहर, सायं - मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशधर्मों पर होते थे। आपके व्याख्यान सुनने के लिये स्थानीय जनता के अतिरिक्त आसपास के गाँवों - बीना, बामौरा, विदिशा, वासौदा, मालथौन, खिमलासा आदि स्थानों के भी अनेक भाई आये थे।

आपके व्याख्यानों से प्रभावित होकर आत्मधर्म के ८ अजीवन तथा ३२ वार्षिक ग्राहक बने। अंत में आपका हार्दिक अभिनंदन किया गया। आपसे आवश्यक विचार-विमर्श हेतु

पर्यूषण के अंत में पंडित जगन्मोहनलालजी कटनी, ब्रह्मचारी माणिकचंद चंवरे कारंजा, श्री नेमीचंदजी पाटनी आगरा आदि पहुँचे। उनके पधारने से इस वर्ष खुरई के पर्यूषण अभूतपूर्व रहे।

– कमलकुमार जैन शास्त्री, खुरई

गुना : आगरा से पंडित नेमीचंदजी पाटनी पधारे। आत्मिक उपलब्धियों को जागृत एवं प्राप्त कराने में पर्यूषण पर्व के दिनों की महत्ता, निश्चय-व्यवहार के प्रति हमारी जिज्ञासा को जिस सरल, सुबोध एवं हृदयग्राही दृष्टांतों के माध्यम से श्री पाटनीजी ने समाज के समक्ष रखा एवं समझाया, उससे सभी मुमुक्षु आत्मविभोर हो उठे। समाज ने नई आत्मिक-शक्ति का संचार अनुभव किया। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म के १० स्थायी एवं ९० वार्षिक ग्राहक बने। पंडित मुन्नालालजी शास्त्री 'धनगोल' ललितपुरवाले भी पधारे थे। समाज के विशेष अनुरोध पर कोटा से ३ लिये पंडित हिम्मतभाई बम्बईवाले पधारे। आपने पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी का अत्यंत सुरुचिपूर्ण माध्यम से रसास्वादन कराया, जिससे जिज्ञासुओं का सहज ही समाधान हो गया।

– माणकचंद पाण्डया

सहारनपुर : बहुत वर्षों की प्रतीक्षा एवं अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप इस वर्ष डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुरवाले पधारे। उनका हार्दिक स्वागत किया गया। कुन्दकुन्द द्वार, अमृतचन्द्र द्वार, टोडरमल द्वार, कानजीस्वामी द्वारा आदि अनेक दरवाजे उनके स्वागत के लिये बनाये गये थे।

आपके मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार एवं दशधर्मों पर हुए तर्कपूर्ण, अत्यंत प्रभावक, रोचक एवं सहज ही सबके गले उतरनेवाले मार्मिक प्रवचनों ने जनता का मन मोह लिया। बहुत प्रभावना हुई।

आपके व्याख्यानों से प्रभावित होकर तीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ आरंभ हुईं। १०० से अधिक आत्मधर्म के वार्षिक ग्राहक बने, १२ आजीवन ग्राहक बने। एक युवा मुमुक्षु मंडल की स्थापना भी हुई, जिसके ५० से अधिक सदस्य बन गये हैं। एक मुमुक्षु मंडल पहले ही चलता है। १५०० रुपये के लगभग का धार्मिक साहित्य बिका। अन्त में आपका अभिनंदन किया गया जिसमें सभी समाज ने आभार माना और शिविर लगवाने हेतु प्रार्थना की।

– पंडित देवचंद जैन, मंत्री, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

आदर्श नगर, जयपुर : गंजबासौदा के पंडित ज्ञानचंदजी 'स्वतंत्र' के आगमन से स्थानीय समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रातः एवं रात्रि दोनों समय आध्यात्मिक प्रवचन होते थे। दशधर्मों पर आपने सुन्दर ढंग से विवेचन किया। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म के ४ स्थायी एवं १० वार्षिक ग्राहक बने।

जयपुर : विदिशा निवासी पंडित सेठ श्री जवाहरलालजी के आगमन से काफी धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रतिदिन पाँच बार पृथक्-पृथक् मंदिरों में प्रवचन होते थे। प्रातः ८ से ९ तक श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी मंदिर जौहरी बाजार में, ९ से १० तक मुलतानी जैन मंदिर आदर्शनगर में, शाम को ३ से ४ तक छहढाला पर दीवान भदीचंदजी के मंदिर में, रात्रि ७ से ८ तक टोडरमल स्मारक भवन में तथा ८ से ९ तक बड़े दीवानजी के मन्दिर में बड़े ही मार्मिक प्रवचन होते थे। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म के अनेकों ग्राहक बने जिनमें २६ स्थायी थे।

- अखिल बंसल, जयपुर

जबलपुर : पर्यूषण पर्व की मंगलबेला में पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा पधारे। आपके ३१ प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ। समाज में एक प्रकार से आध्यात्मिक वातावरण बन गया। शिविर लगाने की माँग भी हुई। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म के १८ आजीवन तथा १२४ वार्षिक ग्राहक बने। अन्त में आपको अभिनंदन पत्र भेंट किया गया।

—सन्मति जैन, जबलपुर

खंडवा : विदिशा निवासी पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, शास्त्री, न्यायतीर्थ, एम.ए., बी.एड. के पधारने से जैन समाज में अभूतपूर्व जागृति हुई। आपके प्रवचन इतने सरल, स्पष्ट तथा तार्किक शैली में होते थे कि जिन्हें सुनकर समाज मंत्रमुग्ध हो जाती थी। आपके प्रवचन प्रतिदिन प्रातः समयसार, दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र तथा रात्रि में उत्तमक्षमा आदि दश धर्मों पर हुए। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर ५० ग्राहक आत्मधर्म के बने जिनमें १० स्थायी ग्राहक भी हैं।

—नेमीचंद जैन, खंडवा

हैदराबाद : इंदौर निवासी पंडित दीपचंदजी पधारे। आपके प्रवचनों की सबने प्रशंसा की और उनसे प्रेरणा पाकर पाठशाला चलाने का निश्चय किया, जिसके लिये योग्य अध्यापक की आवश्यकता है। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म के २० ग्राहक बने। **—जयचंद लुहाड़िया**

नागपुर : पंडित श्री चिमनभाई कामदार के पधारने से बहुत अच्छी धर्म-प्रभावना हुई। आपकी सरल व सरस शैली से सभी आबाल-वृद्ध प्रसन्न थे। छिन्दवाडा से लौटते हुए पंडित चन्दुभाई फतेपुर भी पाँच दिन रुके। दोनों ही विद्वानों के अभूतपूर्व लाभ से समाज बहुत प्रसन्न है।

- निर्मलकुमार जैनी

गोहाटी : कोटा निवासी प्रसिद्ध तात्त्विक विद्वान एवं आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित युगलकिशोरजी 'युगल' पधारे। पर्यूषण के प्रथम दिन कुछ उपद्रवी तत्त्वों ने उपद्रव किया किंतु उसके बाद उनके प्रवचनों का लाभ मुमुक्षु समाज को पूरा-पूरा मिला। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने।

खातेगाँव : सागर से पंडित ताराचंदजी सर्राफ का आगमन होने से अपूर्व धर्म-प्रभावना हुई। आपके आध्यात्मिक उपदेश बड़े ही मार्मिक होते थे।

- फूलचंद बाकलीवाल, खोतगाँव

महीदपुर : कुरावड़ निवासी श्री रंगलालजी पधारे। आपके प्रातः, दोपहर एवं रात्रि को आध्यात्मिक प्रवचन होते थे। प्रवचनों में जैन-अजैन सभी अच्छी संख्या में उपस्थित होते थे। जैनधर्म का मुक्तिमार्ग जानकर अजैन श्रोता काफी प्रभावित हुए। आत्मधर्म के १६ ग्राहक बने।

- कल्याणमल बड़जात्या

गढ़ा कोटा : करेली निवासी पंडित पन्नालालजी पधारे। उन्होंने सुबह-शाम-दोपहर, १-१ घंटे प्रवचन दिये, जिससे समाज को बहुत लाभ हुआ तथा उनके प्रवचनों से प्रेरणा पाकर यहाँ श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल की स्थापना हुई। आत्मधर्म के २२ ग्राहक बने।

- नाथूराम वैशाखिया

करेली : बरायठा निवासी पंडित विजयकुमारजी पधारे। आपके प्रभावोत्पादक प्रवचनों से जैन-अजैन सभी लोगों ने लाभ प्राप्त किया। आत्मधर्म के १४ ग्राहक बने।

- सुरेन्द्रकुमार जैन, करेली

केसली : बरायठा से ब्रह्मचारी बाबूलालजी पधारे। आपके वचनामृतों से नवयुवकों में जागृति हुई तथा समाज को आत्म-लाभ मिला। यहाँ प्रातः ५ से ६ तक क्लास लगती थी, ९ से ११ तक लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, ३ से ४ तक मोक्षमार्गप्रकाशक तथा रात्रि में ८ से ९ तक

छहढाला पर प्रवचन होते थे। यहाँ २० आत्मधर्म के ग्राहक बने तथा पाठशाला भी खोली गई।

–राजेश सिंघई, केसली

करहल : करेली से पंडित कपूरचंदजी केसलीवाले पधारे। आपने प्रतिदिन चार बार एक–एक घंटे की कक्षाएँ लीं तथा अध्यात्म प्रवचनों द्वारा अपूर्व तत्त्वचर्चा और आत्मरस से भरी ज्ञान–गंगा प्रवाहित की। समाज को काफी धर्म–लाभ मिला।

–वीरेन्द्रकुमार 'कुमुद', मंत्री, मुमुक्षु मंडल, करहल

अलवर : कोटा निवासी पंडित कपूरचंदजी के आगमन से महती धर्म–प्रभावना हुई। तीनों समय बहुत ही सरल एवं सुंदर ढंग से प्रवचन होते थे। सभी कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म के २ स्थायी एवं २१ वार्षिक ग्राहक बने। **–नेमीचंद जैन, अलवर**

अलीगढ़ (टोंक) : दशलक्षणधर्म उत्साहपूर्वक मनाया गया। स्थानीय विद्वानों के प्रतिदिन उत्तमक्षमादि दशधर्मों पर प्रवचन होते थे। वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की शीतकालीन परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले स्थानीय बालक–बालिकाओं को प्रमाणपत्र एवं पारितोषिक वितरित किये गये। **– राजमल गोधा, मंत्री, दिगम्बर जैन समाज, अलीगढ़**

फिरोजाबाद : दाहोद से वाणीभूषण पंडित कन्नूभाई शाह एवं ललितपुर से शकुन्तला बहिन के आने से बहुत अधिक धर्म प्रभावना हुई। आप लोगों ने दशधर्मों पर भावपूर्ण ओजस्वी विवेचन बड़ी ही विद्वतापूर्ण शैली में समाज के समक्ष उजागर किया। हजारों की संख्या में मुमुक्षु भाई–बहिनों ने भाग लेकर आत्मरस में भाव–विभोर होकर आनंद उठाया। कन्नूभाई का भक्ति–रस अद्वितीय रहा। आत्मधर्म के ग्राहक भी बनाये गये। **– सूरजभान जैन, फिरोजाबाद**

जबेरा : अशोकनगर से पंडित धर्मचंदजी शास्त्री के आगमन से महती धर्म प्रभावना हुई। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर प्रवचन होते थे। **–डॉ. हुकमचंद जैन, जबेरा**

मलकापुर : अशोकनगर से पंडित अमालेकचंदजी बंधु पधारे। आपके प्रवचन प्रतिदिन तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार तथा दशधर्मों पर चलते थे। आपके प्रवचनों से समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। **– होसीलाल सर्राफ, मलकापुर**

छिंदवाड़ा : फतेपुर निवासी पंडित चंदुभाई के पधारने से समाज को दस दिन तक अभूतपूर्व लाभ मिला। उनके प्रवचन समयसार, छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र पर

हुए। जबलपुर में लौटते हुए पंडिमत ज्ञानचंदजी विदिशा भी दो दिन को आये। उनसे भी अभूतपूर्व लाभ मिला। **-शांतिकुमार पाटनी**

मैनपुरी : ग्वालियर निवासी श्री पंडित धन्नालालजी के पधारने से बहुत आनंद रहा। प्रातः ५ बजे जैन सिद्धांत प्रवेशिका, ९ बजे मोक्षशास्त्र, दोपहर में छहढाला और रात्रि में सामान्य शास्त्र सभा का आयोजन रहा। पंडितजी के प्रवचनों के प्रभाव से एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला खोलने की घोषणा की गयी। स्वाध्याय मंडल की सदस्यता में भी वृद्धि हुई है।

- प्रकाशचंद जैन

विदिशा : ब्रह्मचारी हेमराजजी एवं पंडित अभयकुमारजी जबलपुर (राँझी) के पधारने से अच्छी धर्म-प्रभावना रही। तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक, निश्चय-व्यवहार का सुंदर सरल ढंग से विवेचन किया गया। पंडित अभयकुमारजी को अभिनंदन पत्र भी भेंट किया गया। **-ज्ञानचंद जैन, विदिशा**

शिरपुर : ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी के विराजने से बहुत ही अच्छा वातावरण रहा। उन्होंने प्रवचनों के अतिरिक्त जैन सिद्धांत की कक्षा भी चलायी। बाहर से यात्रीगण भी आये थे। **-नेमचंद आर. मोतुले**

दाहोद : यहाँ श्री भानुकुमारजी ललितपुर पधारे थे। नई उमर के होने पर भी इनके द्वारा ली गयी कक्षाओं एवं प्रवचन से भी संतुष्ट रहे।

-बाबूलाल सर्राफ, प्रमुख, श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

कुशलगढ़ : उदयपुर निवासी पंडित उग्रसेनजी बंडी पधारे। प्रातः ५ से ६ तक समयसार कलश, ९ बजे से मोक्षमार्गप्रकाशक, दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र और सायंकाल दशलक्षण धर्म पर प्रवचन होते थे। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने।

- दिगम्बर जैन तेरापंथी समाज, कुशलगढ़

बीना : भोपाल से पंडित अभिनंदनकुमारजी पधारे। प्रतिदिन प्रातः से सायं तक तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार एवं दशधर्मों पर प्रवचन होते थे व कक्षाएँ भी लेते थे। आपकी प्रेरणा से महिला स्वाध्याय मंडल का गठन हुआ। अंत में पंडितजी को अभिनंदन-पत्र भी भेंट किया गया। **- बाबूलाल जैन 'मधुर', मंत्री, मुमुक्षु मंडल, बीना**

कूंण : ललितपुर से पंडित रमेशकुमारजी के पधारने से अच्छी धर्म प्रभावना हुई। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म के २० ग्राहक बने। सभी कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए। **– वृद्धिचंद**

बारामती : हिंगोली से डॉ. प्रियंकरजी के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रवचन प्रचलित मराठी भाषा में होते थे। समाज को आपके प्रवचनों से काफी लाभ मिला। बारामती में ऐसी प्रभावना पहले कभी नहीं हुई। आपकी प्रेरणा से यहाँ आत्मधर्म के १५ आजीवन तथा १२ वार्षिक ग्राहक बने। **– माणिकलाल तुलजाराम शाह**

प्रतापगढ़ : नराणगढ़ से श्री पंडित जेठमलजी पधारे। दोनों समय आपका बड़ा मार्मिक व तात्त्विक प्रवचन चलता था। जैन–जैनेतर सभी भाई अधिक से अधिक संख्या में भाग लेते थे। आपके सटीक दृष्टांतों से साधारण व्यक्ति भी तत्त्व की बात समझ लेता था।

– मुमुक्षु मंडल, प्रतापगढ़

कुरावड़ : अभाना निवासी पंडित अभयकुमारजी पधारे। आपने दशधर्मों पर बड़ा ही सुंदर विवेचन किया, जिससे समाज में नई जागृति उत्पन्न हुई। आत्मधर्म के २२ ग्राहक बने।

– महावीरलाल जैन

चांदखेड़ी : गुना से श्री केवलचंदजी पाण्ड्या के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रवचनों से समाज में नई जागृति उत्पन्न हुई। आत्मधर्म के २४ वार्षिक ग्राहक बनाये गये। **–राजेन्द्र जैन**

बेगमगंज : बड़ौत निवासी पंडित धर्मदासजी जैन पधारे। आपके प्रवचन चार समय समयसार, तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक एव दशधर्मों पर होते थे। लगभग ४५० रुपये का साहित्य बिका तथा आत्मधर्म के ३ स्थायी तथा १७ वार्षिक ग्राहक बने। **– कस्तूरचंद जैन**

बानपुर : यहाँ पूज्य ब्रह्मचारी आत्मानंदजी का चातुर्मास हो रहा है। आपके तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार, जैन सिद्धांत प्रवेशिका, प्रश्नोत्तरमाला, छहढाला आदि पर सरल, सुबोध एवं मार्मिक प्रवचन होते हैं। समाज में अच्छी धर्म प्रभावना हो रही है।

– प्रेमचंद कैलाशचंद जैन

आरोन : विदिशा निवासी श्री पंडित नंदकिशोरजी गोयल के आने से समग्र जैन समाज ने धर्म लाभ लिया। समाज में व्याप्त विपरीत मान्यताएँ दूर हुईं। आपकी प्रेरणा से यहाँ कुन्दकुन्द

वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रारंभ हुई। आत्मधर्म के ३९ ग्राहक बनाये गये। **-विजय कोछल्ल**

बूंदी : विदिशा निवासी पंडित शिखरचंदजी पधारे। आपके प्रवचनों से समाज में नई चेतना जागृत हुई। आपकी प्रेरणा से ५०० रुपये का साहित्य बिका तथा वीतराग-विज्ञान पाठशाला चलाने हेतु बीस हजार रुपये की घोषणाएँ की गयीं। अनेक मुमुक्षु आत्मधर्म के ग्राहक बने। **-धर्मचंद जैन**

बैंगलोर : पंडित सुकनराजजी पधारे। उनके आने से काफी धर्म प्रभावना हुई। **-प्रवीण दोशी**

बरायठा : स्थानीय विद्वान् पंडित महेन्द्रकुमारजी द्वारा पर्यूषण पर्व में प्रतिदिन तीन बार प्रवचन होते थे। तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाश व दशधर्म प्रवचन के मुख्य विषय थे। अच्छी धर्म-प्रभावना हुई। आत्मधर्म के भी अनेक ग्राहक बने। **-विजयकुमार**

सागर : पंडित झमकलालजी पधारे। उनकी प्रश्नोत्तर-शैली ने और उदाहरणों द्वारा सिद्धांत प्रतिपादन करने के ढंग ने यहाँ के नवयुवकों को नया मोड़ दिया। नवयुवकों के आग्रह पर पर्यूषण के बाद भी १० दिन तक पंडितजी को और रुकना पड़ा। आत्मधर्म के ४५ ग्राहक बने। **-कपूरचंद भायजी**

मुरार : गुना निवासी पंडित मिश्रीलालजी चौधरी पधारे। उनकी प्रेरणा से पाठशाला चलाने का निश्चय समाज ने किया, जिसके लिये विद्वान की आवश्यकता है। **-प्रेमचंद जैन**

छपते-छपते

ललितपुर में छह पाठशालाओं का उद्घाटन

ललितपुर-झाँसी वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के मंत्री श्री अभयकुमारजी टडैया का एक महत्त्वपूर्ण पत्र अभी-अभी प्राप्त हुआ है। जिसमें उन्होंने ललितपुर में छह वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं के विधिवत् उद्घाटन के महत्त्वपूर्ण समाचार इसी अंक में छापने के लिये अति आग्रह के साथ भेजे हैं।

दिनांक २६-९-१९७६ को दोपहर के दो बजे प्रतिष्ठाचार्य पंडित मुन्नालालजी शास्त्री

'कौशल' की अध्यक्षता में एवं पंडित श्यामलालजी न्यायतीर्थ के मुख्य आतिथ्य में अपार जनसमुदाय के बीच पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा ने ज्ञानदीप जलाकर वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का उद्घाटन किया। उक्त सभी विद्वानों के प्रेरक व्याख्यानों एवं बालकों द्वारा प्रस्तुत धार्मिक संवादों के बाद समस्त जनता विराट जुलूस के साथ अटा मंदिर गयी और वहाँ भी पाठशाला विधिवत् चालू की गयी।

आस-पास के गाँवों में भी अनेक पाठशालाएँ आरंभ हुई हैं तथा और भी अनेक गाँवों में पाठशालाएँ प्रारंभ करने का समिति ने निर्णय लिया है। तदनुरूप कार्य भी तेजी से प्रारंभ कर दिया है। आज ही १५ स्थानों को प्रेरणा के पत्र लिखे हैं एवं प्रत्येक रविवार को समिति के कार्यकर्ताओं ने आस-पास के गाँवों में जा-जाकर उक्त कार्य को तेजी से चलाने का निर्णय लिया है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा ललितपुर में लगाये गये प्रशिक्षण शिविर के अच्छे परिणाम आना आरम्भ हो गये हैं।

प्रवेश फार्म भेजिए

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की जनवरी / फरवरी १९७७ में होनेवाली शीतकालीन परीक्षाओं के लिये प्रवेश फार्म भरकर बोर्ड कार्यालय में प्राप्त होने की अंतिम तिथि १ नवम्बर, १९७६ है। प्रवेश फार्म संबंधित केन्द्रों को भेजे जा चुके हैं। अतः केन्द्राध्यक्षों से निवेदन है कि फार्म भरकर शीघ्र भेजें। फार्म के प्रत्येक कॉलम की पूर्ति स्पष्ट अक्षरों में करें। घसीटा (अस्पष्ट) राइटिंग लिखने से साफ पढ़ने में नहीं आती है, इसलिये गलत नाम भी लिखा जा सकता है व सर्टिफिकेट में भी वही गलत नाम लिखा जाता है, अतः कृपया स्पष्ट अक्षर लिखने का ध्यान रखें।

-हेमचंद्र जैन 'चेतन'

आवश्यकता है एक ऐसे धर्म अध्यापक की जो बालकों को वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की पाठ्यपुस्तकें पढ़ा सके। साथ ही प्रवचन भी कर सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन योग्यतानुसार।

विजय कोछल्ल द्वारा पंडित मोतीलालजी कोछल्ल
आरोन (जिला गुना) म.प्र.

पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

अशोकनगर (म.प्र.) से दि० जैन मुमुक्षु मंडल के मंत्री श्री हरकचंदजी बिलाला लिखते हैं:-

आपके हाथ में आकर आत्मधर्म चमक उठा है। अल्पकाल में २००० की ग्राहक संख्या से ७००० ग्राहक हो जाना, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आपके हाथ में जो काम आता है, व्यवस्थित हो जाता है। **पूज्य गुरुदेव के प्रताप से वर्तमान तत्त्वप्रचार का कार्य तेजी से बढ़ रहा है,** उसी मात्रा में उसकी राह में विघ्न बाधाएँ भी बढ़ रही हैं; अत: मेरी तुच्छ राय के अनुसार सोनगढ़ या अन्य उपयुक्त स्थान पर सब मुमुक्षु-मंडलों के प्रतिनिधियों का एक-दो दिन का एक सम्मेलन हो, जिसमें तत्त्वप्रचार के कार्य को व्यवस्थित एवं निर्विघ्न संचालन के लिये महावीर-सेवादल के गठन आदि-आदि उपायों पर विचार कर कुछ ठोस निर्णय लिये जावें।

जयपुर से पंडित बंशीधरजी शास्त्री, एम.ए. लिखते हैं :-

हिन्दी आत्मधर्म के जयपुर से प्रकाशित तीन अंक यथावसर पढ़े। अंकों के नव प्रकाशन से जहाँ सुंदरता में वृद्धि हुई है, वहीं पठनीय सामग्री के प्रस्तुतीकरण में भी विशेष आकर्षक ढंग अपनाया गया है। इससे पाठक आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता।

प्रथम अंक में प्रकाशित 'चैतन्य चमत्कार : एक इंटरव्यू' लेख श्रद्धेय कानजीस्वामी के संबंध में विरोधी भाइयों द्वारा प्रसारित भ्रम को दूर करने में सक्षम होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। ऐसे इंटरव्यू को बुलेटिन के रूप में अधिकाधिक प्रसारित करने की आवश्यकता है।

श्री कानजीस्वामी द्वारा कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पंडित बनारसीदासजी, पंडित टोडरमलजी आदि महान आचार्यों एवं विद्वानों की वाणी का बहुत ही प्रशंसनीय प्रचार हो रहा है। आपके ऊपर इनका विशेष उत्तरदायित्व है। आशा है आप इसे अनुभव करेंगे।

झांसी (उ.प्र.) से श्री अभिनंदनकुमारजी टडैया, एडवोकेट लिखते हैं:-

आत्मधर्म के अंक प्राप्त हुए। इनकी साज-सज्जा देखकर तथा समयानुसार विषयों का चयन एवं लेख पढ़कर मन मुग्ध हो गया।

भीलवाड़ा (राज.) से श्री रमेशकुमारजी जैन, डिप्टी कलक्टर लिखते हैं:-

नवीनीकृत आत्मधर्म प्राप्त कर बहुत प्रसन्नता हुई। मेरा एक सुझाव है। प्रत्येक अंक में यदि श्रद्धेय पंडित खीमजीभाई, पंडित बाबूभाई, युगलजी, पंडित रतनचन्दजी, पंडित ज्ञानचंदजी आदि विद्वदजनों के लेख भी पढ़ने को मिलें तो आनंद में निश्चितरूप से वृद्धि होगी।

विदिशा (म.प्र.) से पंडित ज्ञानचंदजी जैन लिखते हैं :-

आत्मधर्म को तो अब पढ़कर बालकों को भी अध्यात्म का रस अत्यधिक बढ़ गया है। इससे ग्राहकों में सहज ही वृद्धि हो गयी। आपका हमारे ऊपर अत्यंत ही उपकार है जो जीवन में भुलाया नहीं जा सकता है कि प्रशिक्षण के माध्यम से हमारे जीवन को स्वच्छ बनाने हेतु सही तत्त्वदृष्टि **पूज्य गुरुदेव की छत्रछाया में दी है।**

खंडवा (म.प्र.) से श्रीमती संतोषबाई लिखती हैं :-

आपकी इतनी सरल लेखनी पढ़कर मन में बहुत उत्कंठा एवं रुचि पैदा हुई। वैसे मैं आत्मधर्म को पूर्व में पढ़ती थी। वीतराग उपदेशक पूज्य स्वामीजी के प्रवचन जितने अभी सरल, स्पष्ट एवं हृदयस्पर्शी हैं; वे पहले मुझे इतने स्पष्ट नहीं होते थो, जिसके कारण मैं इतने अच्छे भावों को पकड़ने में असमर्थ पाती थी। वास्तव में आपके द्वारा यह पुनीत कार्य स्तुत्य है। नवीन आत्मधर्म का प्रिन्ट बहुत आकर्षक है। अक्षर बड़े होने से हमें पढ़ने में सुविधा होती है।

जयपुर से श्री लादूराम जागीरदार लिखते हैं :-

स्वामीजी का इन्टरव्यू बहुत अच्छा छापा, इससे लोगों द्वारा फैलाया भ्रम दूर हुआ है। इसकी जितनी प्रशंसा की जावे, थोड़ी है। आपके द्वारा संपादित आत्मधर्म से लोगों को आत्महित का लाभ तो मिलेगा ही, स्वामीजी के प्रति लोगों की श्रद्धा भी बढ़ेगी।

दुर्ग (म.प्र.) से श्री कुंदनमल सेठी लिखते हैं:-

'आत्मधर्म' जयपुर से प्रकाशित पत्रिका प्राप्त हुई। इन्टरव्यू वाले लेख से बहुत शंकाऐं जो भ्रम में डाल रही थीं, उनका निवारण हो गया। निवेदन है कि यह क्रम बनाए रखें।

प्रबंध संपादक की कमल से

(१) ड्राफ्ट भिजवानेवाले बन्धु के Atmadharma नाम से ड्राफ्ट बनवाएँ।

(२) टोडरमल स्मारक भवन में सभी विभाग पृथक्-पृथक् हैं। अत: जो भी सज्जन पत्र व्यवहार करें वे पृथक्-पृथक् विभाग के नाम अलग-अलग पत्र दें। एक ही लिफाफे में सभी विभागों के पत्र रख सकते हैं, परन्तु एक ही पत्र में सब विभागों से संबंधित बातें न लिखें। इससे कार्य में विलंब होता है।

(३) ट्रस्ट का बैंक खाता 'पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट' के नाम से है। कई सज्जन ट्रस्ट के स्थान पर भवन लिख देते हैं तथा श्री लगा देते हैं जिससे ड्राफ्ट भुनता नहीं है। अत: ड्राफ्ट, बैंक आदि 'पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट' के नाम से भेजें।

(४) जुलाई तथा अगस्त के आत्मधर्म रिप्रिंट देरी से हो सकने से इस अंक के साथ भेज रहे हैं। जिन्हें १५ अक्टूबर तक प्राप्त न हों, वे पत्र डालकर मंगा लें।

हमारी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ –

- महावीर वाणी के गूढ़ रहस्य को प्रगट करनेवाले पूज्य कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का 'आत्मधर्म' पत्र द्वारा जन-जन में सम्प्रेषण।
- सोनगढ़ में संपन्न शिविरों द्वारा तैयार किये गये सदाचारी एवं तत्त्वप्रेमी आध्यात्मिक विद्वान।
- स्थान-स्थान पर संपन्न शिविरों द्वारा जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार व प्रसार।
- प्रौढ़ों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में मुमुक्षु मंडलों द्वारा शास्त्र सभाओं का संचालन।
- बालकों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का संचालन।
- सस्ता सत्साहित्य प्रकाशन एवं वितरण।
- तत्त्व-प्रचार व प्रसार को नियमित करने के लिए वीतराग-विज्ञान परीक्षा बोर्ड का संचालन।
- नवीन वैज्ञानिक धार्मिक पाठ्यक्रम।
- प्रशिक्षण-शिविरों द्वारा प्रशिक्षित धार्मिक अध्यापक।
- तीर्थों की सुरक्षा हेतु सर्व प्रकार का सहयोग।

- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़
- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर – ३०२००४
- श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, बम्बई

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे
समयसार	१२-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००
छहढाला (सचित्र)	१-५०
द्रव्यसंग्रह	१-२०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
बालपोथी भाग १	०-२५
बालपोथी भाग २	०-४०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

	रु० पैसे
परमात्म पूजा संग्रह	२-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ?	१-००
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
अपने को पहचानिए	०-५०
पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**